Chap-10

दशम अध्याय

डा0 भारती : उपलब्धियां और देन

दशम अध्याय

उपलब्धियाँ और देन

डा0 धर्मवीर भारती स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य के एक वरिष्ठ और बहुचर्चित साहित्यकार हैं। वे मूलत: भावुक हृदय के रोमांस प्रिय कवि हैं। काव्येतर गद्य-साहित्य की अन्य विधाओं पर भी उन्होंने बड़ी खूबी से हाथ अजमाने में अभीष्ट सिद्धि और प्रसिद्ध अर्जित की है। साहित्य के दोनों ही रूपों में उन्होंने प्रयोगों की नवीन सम्भावनाओं का आविष्कार किया है और साथ ही साथ परम्परागत काव्य-चेतना का परिष्कार भी किया है। वे परम्परा और प्रयोग के बीच के कवि हैं 'भारती केवल परम्परा तोड़ने मात्र के लिए परम्परा नहीं तोड़ता और न प्रयोग मात्र के लिए प्रयोग करता है।'[1] मांसल श्रृंगार और प्रेम की कविताओं में उनका मन बेहद रमा है। अपनी तूलिका में तारों से रोशनी और फूलों से रंग लेकर साहस-पूर्ण उन्मुक्त रूपोपासना और उद्दाम यौवन की सर्वथा मांसल प्रेम-भावनाओं को पावनता की दृष्टि से चित्रांकित करनेवाले कवि डा0 भारती का रोमाण्टिक काव्य हिन्दी काव्य-जगत में उनके पूर्व की छायावादी या स्वच्छंदतावादी काव्य-धारा के विकास की एक ऐतिहासिक उपलब्धि है। साथ ही वे अज्ञेय की उस प्रयोग-वादी काव्य-चेतनाके पुरोधा हैं जो अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए प्रयोगों को अन्वेषण की नयी-नयी राह के रूप में मानकर विकसित हुई है। कहना न होगा कि इसकी परिणति अंततोगत्वा नयी कविता के रूप में हुई है। प्रयोगशील नये कवि के रूप में डा0 भारती का विशिष्ट स्थान है। उन्होंने अन्य प्रयोगशील नये कवियों की भांति ही अस्तित्व के संकट में टूटते हुए तथा प्रतिक्रिया के स्तर पर अस्तित्व की रक्षा के लिए विषाक्त विषम परिस्थितियों से जूझते हुए आज के व्यक्ति के चरित्रों को सहज मानवता की प्रामाणिक दृष्टि से देखने का प्रयास किया

1- सं0 अज्ञेय दूसरा सप्तक-वक्तव्य

है। इस स्तर पर के फ्रायड के मनोविज्ञान और सार्त्र की अस्तित्ववादी जीवन दृष्टि से प्रभावित हैं। इसी प्रकार उन्होंने अपने समस्त काव्य में प्रगतिशील चेतना को तो अपनाया है किन्तु मार्क्सवादी कर्ष को भारतीय जन-जीवन पर पोतकर देखना वे कतई पसंद नहीं करते।

'ठण्डा लोहा' डा० भारती का प्रारंभिक काव्य-संग्रह है। इसमें 'फीरोजी होंठ' और 'गुनाहों का गीत' जैसी रूमानी कविताएं हैं तो वहीं 'ठण्डा लोहा', 'फूल-मोम बत्तियां' और 'सपने' जैसी युग के दंश और अभिशाप को प्रकट करनेवाली कविताएं भी हैं। 'सात गीत वर्ष' (काव्य-संग्रह) तक आते-आते कवि की रूमानी चेतना आधुनिक भाव-बोध के यथार्थ फलकों को छूने लग जाती है। वस्तुत: 'प्रमथ्यु' के द्वारा अग्नि की खोज आज के विषमाधिकार में टूटे और भटके हुए व्यक्ति द्वारा अस्तित्व की ज्योति को खोजना ही प्रयास है। डा० भारती के काव्य की उक्त दोनों प्रवृत्तियां जो 'ठण्डा लोहा' और 'सात गीत वर्ष' में प्रकट हुई हैं उनमें से एक का अर्थात् रूमानी काव्य-चेतना का विकास 'कनुप्रिया' में हुआ है (विशेषत: उसके पूर्वार्द्ध में, उत्तरार्द्ध यथार्थमूलक है) तो दूसरी का विकास पूर्ण रूप से 'अंधायुग' में हुआ है। डा० भारती की हिन्दी काव्य-जगत में सर्वाधिक प्रसिद्धि का आधार उक्त दो बहुचर्चित काव्य कृतियां हैं। 1955 से 1965 तक की हिन्दी-कविता का देश 'अंधायुग' और 'कनुप्रिया', 'अरी ओ करुणा प्रभामय' और 'आंगन के पार द्वार' 'चांद का मुंह टेढ़ा है', 'एक कण्ठ विषपायी' तथा 'आत्मजयी', का देश है। फिर भी यह विलक्षण बात है कि इस कविता को प्रतिष्ठा अज्ञेय, शमशेर, या मुक्तिबोध की कविताओं से नहीं मिली। यह कार्य धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' द्वारा सम्पन्न हुआ। 'अंधायुग' का महत्व मात्र इतना ही नहीं है कि इससे हिन्दी में पहली बार रंगमंच पर कविता की सार्थकता सिद्ध हुई, बल्कि यह भी कि हिन्दी नाटकों की परम्परा में यह पहला श्रेष्ठ नाटक भी है।'[1] दोनों ही कृतियों

1- सं० लक्ष्मणदत्त गौतम 'धर्मवीर भारती', विजेन्द्र नारायण सिंह का लेख- दृष्टि-वैशिष्ट्य का यथार्थवादी कवि' पृ० 220

में उन्होंने पुराने मिथकों के सहारे एक पूरे युग-व्यापी अस्तित्व-संकट के परिवेश में आज के जीवन के नये संदर्भों की सार्थक और प्रामाणिक व्याख्या प्रस्तुत की है। उनका समस्त काव्य आज की नैतिकता के नये मानदण्डों की जन-जीवन में प्रतिस्थापना के द्वारा आज के व्यक्ति को उसके संपूर्ण परिवेश में देखते-परखते हुए व्यक्ति-विकास की सामूहिक प्रगति की नई दिशाओं को खोजता हुआ दृष्टिगत होता है। यह निसन्देह कहा जा सकता है कि डा० भारती ने नई कविता को जहां एक ओर अपनी मांसल व स्वच्छंद प्रेमानुभूति के प्रयोगवादी आकर्षक और वैविध्यपूर्ण जिस्म दिये हैं वहीं उन्होंने उसे आधुनिक यथार्थ बोध को आत्मसात करानेवाली अन्तर्दृष्टि भी प्रदान की है। डा० भारती का काव्य मूल्यगत संत्रास से उत्पन्न अस्तित्ववादी चेतना की देन है। लघुता अस्तित्ववादी काव्य चेतना की एक प्रमुख विशेषता है। किन्तु यह लघुतागामी अस्तित्ववादी चेतना जयशंकर प्रसाद की यथार्थवादी चेतना से कितनी मेल खाती है। उन्होंने अपने निबंध 'यथार्थवाद और छायावाद' में लिखा है - 'यथार्थवाद की विशेषताओं में प्रधान है लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात। उसमें स्वभावत: दु:ख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है। लघुता से मेरा तात्पर्य है साहित्य के माने हुए सिद्धांत के अनुसार महत्ता के काल्पनिक चित्रण से अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन के दुख और अभावों का वास्तविक उल्लेख। डा० भारती के काव्य की वस्तुगत चेतना भी वस्तुत: उक्त लघुता के यथार्थ से ही निर्मित है। वे काव्य में दैवी या काल्पनिक चरित्रों की अपेक्षा आज के टूटे, अस्तित्वहीन लघु मानव को उसके समस्त परिवेश में मूल्यांकित करना साहित्यकार का श्रेष्ठ दायित्व समझते हैं। इसीलिए वे साहित्यकार को जन-सामान्य की नियति से प्रतिबद्ध मानकर चले हैं। वे मानववादी होने का अर्थ भी जन-यथार्थ की इसी पकड़ में पाते हैं। वे मानते हैं कि यथार्थ की पकड़ साहित्यकार में तब आती है जब वह अपने को जन-जीवन का अंग बना देता है। जनता से ऊपर उठे होने का अहम् नहीं वरन् जनता से तद्रूपता की

अनुभूति ही यथार्थ की पकड़ को संभव बनाती है। उनकी एक अवतार में शीर्षक कविता में इसी यथार्थ को छूने की ओर कवि का संकेत बड़ा ही ध्वन्यात्मक है। -

सुनते हैं तुम किसी अवतार में कछुए थे
अपनी इस वज्रोपम पीठ पर
तुमने यह धरती टिकायी थी -
(लेकिन उपयोग क्या किया था
सुकोमल मर्मस्थल का ?
उससे क्या नीचे उतर
थाहा था अनस्तित्व का सागर
पतनोन्मुख होकर
दिग्भ्रम, निराशा, भटकन
सीलन, कीचड़, काई
पाप, उबकाई -
के स्तर छुए थे ?)[1]

काव्य में आधुनिक भाव-बोध के अनुरूप ही डा0 भारती ने काव्य के कला या शिल्प के क्षेत्र में भी अनूठे प्रयोग किये हैं। रस के क्षेत्र में उन्होंने अज्ञेय की भांति ही नवीन आलम्बनों व नवीन उद्दीपन विभावों के प्रयोग से बताई गई लीक को आगे बढ़ाकर परम्परागत रसों को नवीन रूप प्रदान किया है। किन्तु

1- सात गीत वर्ष- पृ0 81,82

आज की जटिलतर स्थितियों में उन्होंने रस की अपेक्षा 'प्रभाव' की स्थिति को ही अधिक उचित माना है। एक उदाहरण देखिए जिसमें भाव है, प्रभाव है और रस भी है -

'रात :
पर मैं जी रहा हूं निडर
जैसे कमल
जैसे पन्थ
जैसे सूर्य'[1]। इस उदाहरण में रात (अपने प्रतीकार्थ में आज के जीवन का गहरा संकट, दिशाहीनता) आलम्बन विभाव है। मैं अर्थात् आज का लघु व्यक्ति आश्रय है। निडर रूप से जीने की जिजीविषा में उत्साह भाव सन्निहित है। भविष्यत कमल का पुनः खिलना, सूनसान पन्थ का रात के बाद पुनः चहल पहलों से भर जाना, और सूर्य का प्रातःकाल में पुनः उदित होना जैसी सुखद कल्पनाएं उद्दीपन-विभाव हैं जो स्थायी भाव उत्साह या जिजीविषा की भावना को पुष्ट करते हैं। यहां रस (वीर) रूप में उक्त भावना की पूर्ण पुष्टि या अभिव्यक्ति न होकर केवल उसके प्रभाव की प्रतीति ही होती है। तात्पर्य यह है कि डा0 भारती ने काव्य-बोध को रस के पुराने चोले में न बांधकर उसे नवीन रूप में अभिव्यक्ति दी है। इस दृष्टि से उनके काव्य में नवीन उपमानों, प्रतीकों तथा बिम्बों का प्रचुर प्रयोग भी किया गया है। उक्त उद्धरणों से देखने ही बनता है। छंद की दिशा में उन्होंने पुराने छंदों के आधार पर नवीन छंद प्रयोग भी किये हैं। गीत और लय पर आधारित मुक्त छंदों का प्रयोग सर्वाधिक रूप से हुआ है। इसके साथ ही लोकगीतों की धुन पर भी कुछ रचनाएं मिलती हैं। 'बोवाई' का गीत एक ऐसा ही गीत है।

1- वही- पृ0 66

भाषा के क्षेत्र में नयी कविता की प्रमुख विशेषता शब्द को नये अर्थों से भर देने की है। जीवन के नये संदर्भों के आधार पर डा० भारती ने शब्दों में नया अर्थ भरने की भरसक कोशिश की है। इससे उनकी भाषा प्राय: प्रतीकात्मक हो गई है। इसके साथ ही वस्तु-बोध की सहज प्रतीति के लिए बिम्ब-बहुला चित्रात्मक भाषा का प्रयोग भी भाषा को प्रभावोत्पादक बनाने के उद्देश्य से किया गया है। कहीं भाषा में गद्य की सी शुष्कता के भी दर्शन होते हैं। 'कनुप्रिया' के अनेक स्थानों पर ऐसी भाषा को देखा जा सकता है। इनके काव्य की भाषा में देशज एवं तद्भव शब्दों की भरमार अधिक है। बोलचाल की सहज लहजेवाली मुहावरेदार भाषा का प्रयोग 'ठण्डा लोहा' और 'सात गीत वर्ष' की रचनाओं में हुआ है। तात्पर्य यह है कि कवि भारती ने काव्य भाषा को भावों के अनुरूप ढालकर प्रांजल और सम्प्रेषणशील बनाने का सर्वथा प्रयास किया है। जहां अज्ञेय की काव्य-भाषा बौद्धिक आभास साध्य दुरुह प्रतीक प्रयोगों एवं क्लिष्ट शब्द प्रयोग के कारण प्रभाव की शीघ्रानुभूति में बाधा उत्पन्न कर देती है, ठीक इसके विपरीत डा० भारती की काव्य भाषा क्षणानुभूतियों एवं सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने में किसी प्रकार के अर्थ काठिन्य की प्रतीति नहीं कराती। तात्पर्य यह है कि नवीन वस्तु की अभिव्यक्ति के लिए डा० भारती ने नये प्रतीक, उपमान और बिम्बों का सटीक प्रयोग किया है। अवश्य ही उनके काव्य-भाषागत नये प्रयोग साहित्य की नवीन दिशा के द्योतक हैं।

प्रयोगशील कवि रूप के समान ही डा० भारती का गद्य-लेखक का रूप भी गद्य-विधाओं के नवीनतम प्रयोगों और उसके स्थापत्य की नयी सम्भावनाओं के स्तर पर अवतीर्ण हुआ है। गद्यकार के रूप में डा० भारती ने कथा-साहित्य, नाट्य, निबंध और आलोचना साहित्य की सर्जना की है। स्वातंत्र्योत्तर कथा-साहित्य ने रूप और शैली की दृष्टि से नवीन प्रयोग किये हैं। डा० भारती ने भी कथा के नवीन रूप और

उसके 00 शैली-शिल्प का आविष्कार किया है। उन्होंने हिन्दी कथा साहित्य को दो उपन्यास 'गुनाहों का देवता', 'सूरज का सातवां घोड़ा' तथा एक संयुक्त लेखन में लिखा गया उपन्यास 'ग्यारह सपनों का देश' भेंट किया है। 'चांद और टूटे हुए लोग' तथा 'बन्द गली का आखिरी मकान' उनका दो कहानी संग्रह है। दोनों ही उपन्यास आज की प्रमुख समस्या अर्थ और काम की चेतना से आहत व्यक्ति के जीवन की करुण ट्रेजड़ी के मर्मस्पर्शी कथा-सूत्रों को इस रूप में प्रस्तुत करते हैं कि कहीं यथार्थ पर आदर्श हावी हो गया है तो कहीं यथार्थ और कहीं उन दोनों के बीच समन्वय की स्थिति से समझौता कर लिया गया है। इनमें व्यक्ति के द्वन्द्व को उसकी समस्त विकृतियों के साथ प्रस्तुत किया जाने के कारण ये व्यक्तिवादी चेतना पर आधारित यथार्थवादी उपन्यास हैं।

'गुनाहों का देवता' किशोर वय की रूमानी प्रेम-कल्पनाओं के आदर्श पर आधारित डा० भारती की प्रारंभिक रचना है। इसमें वासना और भावना के द्वन्द्व में डूबते-उतराते व्यक्ति की मानसिकता का सामाजिक परिवेश में मनोवैज्ञानिक ढंग से यथार्थांकन किया गया है। इसके आरंभ में रोमांस के आदर्श की प्रधानता है तो उत्तरार्द्ध में वासना के यथार्थ के साथ उसका समन्वय भी। चरित्र अहं एवं यौन-विकृतियों से ग्रस्त हैं। उनमें सामाजिकता से लोहा लेने के साहस का अभाव होने के कारण पुंसत्वहीनता के पात्र ठहरते हैं। 'धर्मवीर भारती ने देश की पृष्ठभूमि पर कुंठित व्यक्तियों को रखा, इसलिए व्यक्ति-सापेक्ष उपन्यास था किन्तु कहीं इसको सामाजिक रंग मिले हैं, तो कहीं मनोविश्लेषणात्मक, कहीं व्यक्तियों को केन्द्र बनाया है तो कहीं समाज को, कहीं पात्रों को व्यक्ति रूप में रखा है तो कहीं उनका सामाजिक व्यक्तित्व। असफल प्रयोग होते हुए भी इसे अभिनव प्रयोग मानना पड़ेगा।'[1] अत: स्पष्ट है

1- डा० महावीर मल लोढा 'हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन', पृ० 277

कि प्रस्तुत उपन्यास व्यक्ति-चरित्र की नवीन सम्भावना की दिशा में एक नया दृष्टिपात है। वस्तु गठन पारम्परिक औपन्यासिक शिल्प के ढांचे में बंधा हुआ होने पर भी इसमें आधुनिक कथा-शैलियों का समाहार किया गया है। अतः शिल्प विन्यास की दृष्टि से इसे परम्परा और प्रयोग के बीच एक सेतु का उपन्यास कहा जा सकता है।

'सूरज का सातवां घोड़ा' अभिनव रूपात्मक गठन का लघु उपन्यास है। वस्तु और शिल्प की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास साहित्य में डा० भारती की यह एक अप्रतिम उपलब्धि है। इसमें सात दोपहरें हैं और अनध्याय। सात दोपहरों में प्रायः सात कहानियां, कही गई हैं लेकिन कुल मिलाकर ये तीन कथाएं हैं जमुना, लिली और सती की। अपनी अन्विति में ये तीनों कथाएं मूलतः एक ही कथा कहती हैं और यह कथा माणिक मुल्ला के जीवन-वास्तव की है। कथा-सूत्रों को शिल्प-कौशल के ऐसे ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि प्रत्येक कथा अपने में स्वतंत्र भी है और पूर्वापर सम्बंधित होने से एक पूरे उपन्यास का जायका भी देती है। इसमें एक कथा से दूसरी कथा के निसृत होने से इस उपन्यास को, 'कथा चक्र पद्धति' के ढंग का उपन्यास भी कहा गया है। इसमें व्यक्तिगत कुण्ठा के माध्यम से मध्यवर्गीय समाज की विसंगतियों से उत्पन्न द्वन्द्व का यथार्थांकन प्रस्तुत किया गया है।

आधुनिक कहानी साहित्य में कस्बाई जीवन के कहानीकार के रूप में डा० भारती को आशातीत सफलता मिली है। कहानी के क्षेत्र में उनके आदर्श प्रसाद और निराला रहे हैं। आस्कर वाइल्ड की कहानियों की टैकनिक से भी वे प्रभावित हैं। 1955 के पूर्व लिखी गई उनकी कहानियां 'चांद और टूटे हुए लोग' में संकलित हैं। ये उनकी प्रारंभिक कहानियां हैं किन्तु ये वास्तव में लेखक की सांस की कलम से लिखी गई कहानियां हैं जिनकी ओर संकेत करते हुए माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा है - 'भारती की अंगुलियों ने एक जीवन के अनेक टुकड़े कर जहां-जहां जिस-जिस

रूप में संवारने का उपक्रम साधा है, सब बड़े प्यार से पढ़ा जाता है। खूब दूर तक भारती की दृष्टि जीवन के परमत्व को छू गई है।'[1] वस्तुत: ये कहानियां अपने प्रारंभिक दौर में रूमानी प्रेम की आदर्शवादी कल्पना पर आधारित हैं किन्तु इनमें भी यथार्थ की चेतना अपने आधुनिक परिवेश में उभरती हुईदृष्टिगत होती है। इनमें निसन्देह विश्व की कहानियों के स्तर को छूने की एक गौरव भरी ललकार का स्वर गुंजरित है। 'गुलकी बन्नो' से डा0 भारती की कहानी चेतना एक नया मोड़ प्रस्तुत करती है। ऐसी कहानियां 'बन्द गली का आखिरी मकान' में संकलित हैं। इनमें सामाजिक विषमता और विसंगतियों से आहत व्यक्ति के अन्तर्संघर्षों का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि कहानियां आकार-प्रकार में लम्बी हो गई हैं। किन्तु कथासूत्र मानसिक संवेगनों और प्रतिक्रियाओं के सूक्ष्म वातावरण से आधार ग्रहण कर विकसित हुए हैं। प्रस्तुत कहानियां निम्न और मध्यवर्गीय समाज के पीड़ित और उपेक्षित लोगों के जीवन की करुण ट्रेजड़ी का जीवंत प्रारूप हैं। पात्रों को यथार्थ के स्तर पर प्रस्तुत करने में लेखक ने अपने आदर्श को आरोपित नहीं किया है। उनके जीवन की यथावत् आशा-निराशा, आस्था-अनास्था या संकटापन्न स्थितियों में नियति के आगे परास्त या विवश होने जैसी विविध भाव-छवियों को सहजरूप में अत्यंत संवेदनशीलता के साथ उभारा गया है। इनमें नाटकीय कथा-शैली के साथ ही मनोविश्लेषणपरक शैलियों का भी प्रयोग किया गया है। इस दृष्टि से 'सावित्री नं0 2' कहानी विशेष उल्लेखनीय है।

कथा-साहित्य की भांति ही नाट्य-साहित्य में भी डा0 भारती हिन्दी साहित्य में उनके एक काव्य-नाटक 'अंधायुग' तथा एक 'एकांकी संग्रह 'नदी प्यासी थी' की रचना एवं शिल्प की विशिष्ट उपलब्धियों के कारण प्रतिष्ठित हो सके हैं। 'अंधायुग' अतुकांत काव्य-नाटक का हिन्दी में बेजोड़ प्रयोग सिद्ध हुआ है। कई बार अभिनीत होने के उपरान्त इसने रेडियो-रूपान्तर की सम्भावना को भी नयी दिशा दी है। डा0 भारती के एकांकी नाटक प्राय: रंगमंचीय सफलता को सिद्ध कर सके हैं।

1- चांद और टूटे हुए लोग शुभास्ते पन्थान, पृ0 263

अनेक एकांकियों में संकलन त्रय के विवेक को भी नाटककार ने अपनी विशिष्ट रंग-दृष्टियों से सरलतर बनाने की कोशिश की है। आत्मविश्लेषण के लिए पात्रों को यथेष्ट आन्तबाह्य की संघर्षात्मक स्थितियों में प्रस्तुत किया जाने से इन एकांकियों में यथार्थ का स्वर प्रबलतम रूप से मुखरित हो पाया है। तात्पर्य यह है कि ये एकांकियां प्राय: मानसिक वातावरण प्रधान एकांकियां है। 'संगमरमर पर एक रात', 'नदी प्यासी थी', 'आवाज का नीलाम' ऐसी ही एकांकियां हैं। आत्म-प्रवृति के दर्शन के लिए 'नीली झील' का रंगमंचीय प्रयोग, एक ऐसा ही नवीन प्रयोग है। नाटक प्राय: दुखांत है। किन्तु वर्तमान के ध्वंस पर नूतन-निर्माण की सुखद कल्पना के रूप में नाटककार की भविष्योत्मुखी आस्था को सहज ही देखा जा सकता है।

आधुनिक व्यंग्य के ललित निबंधकारों में डा0 भारती का स्थान विशिष्ट है। अपने तीन निबंध संग्रह 'ठेले पर हिमालय', 'पश्यन्ती' और 'कहानी अनकहनी' में उन्होंने विविध शिल्प प्रयोग किये हैं। लघुकथा, रेखाचित्र, डायरी, रिपोर्ताज, पत्र, अखबारों की कतरनें आदि अनेक माध्यमों को लेखक ने निबंध के रूप में आत्मसात किया है। कई निबंधों में व्यंग्य-कथन एवं नाट्य-निबंध के रूपों की सफल सृष्टि हुई है। 'गुलिवर की तीसरी यात्रा', तथा 'रत्नाकर शान्ति का सान्ध्य चिंतक' ऐसे ही निबंध हैं। कई निबंध प्रतीकात्मक या रूपकात्मक हैं। 'एक छोटी चमकनेवाली मछली की कहानी' ऐसा ही निबंध है। डा0 भारती के पत्रकार होने के कारण इनके निबंधों में पत्रकार की तेज तर्रार, सही और पैनी दृष्टि उभर आई है। 'ठेले पर हिमालय' के लेखक भारती में सूक्ष्म परिहास-व्यंग्य की भावना, भाषा पर रसानुकूल अधिकार और समाज के दुचितेपन को चीरकर रख देने की लौह-लेखनी की विशेषता है। 'भारती कवि, नाटककार, उपन्यासकार भी है, परन्तु उनकी पत्रकार रूप में सफलता का बहुत बड़ा श्रेय उनकी इस निबंध शैली है। 'संगम' के सम्पादक के रूप में सन् 50 से हम उन्हें जानते हैं - उनके पास एक मुक्त मन है जो दम्भ के प्रति सदा विद्रोह करता रहा है।'[1]

1- प्रभाकर माचवे, कल्पना-दिसम्बर 1969 पृ0 32-33

निबंधकार डा० भारती की भांति प्रयोगशील नयी कविता के कवि आलोचकों में बहुचर्चित आलोचक हैं। 'प्रगतिवाद : एक समीक्षा' तथा 'मानव मूल्य और साहित्य' में उनके सशक्त आलोचनाकार और प्रबुद्ध चिंतक के रूप को देखा जा सकता है। उन्होंने मुख्य रूप से नयी कविता के मूलार्थों को सैद्धांतिक स्तर पर स्थापित करने का प्रयास किया है। और इस प्रक्रिया में उन्होंने पुरानी पीढ़ी की धुरीहीनता पर आक्रमण भी किया है।

एक सफल अनुवादक के रूप में डा० भारती ने पश्चिम के इक्कीस देशों की आधुनिक युग बोध पर आधारित विदेशी कविताओं की हिन्दी छायाएं भी 'देशान्तर' के रूप में प्रस्तुत की हैं।

डा० भारती ने अपने समस्त साहित्य में समसामयिक दायित्व को बड़ी सजगता से निभाया है। साहित्य में प्रयोगशीलता, युगबोध की समस्या साहित्यिक एवं कलात्मक मूल्यों के प्रश्नों को साहित्येतर आग्रहों से पृथक स्थापित करने में डा० भारती का योगदान प्रवर्तमान साहित्य की ऐतिहासिक उपलब्धियों में कुछ कम नहीं है।

परम्परा और प्रयोग दोनों के बीच एक संतुलित समन्वय करते हुए डा० भारती ने सांस्कृतिक दृष्टि से उन सबके उत्तराधिकार को स्वीकार किया है जो चिन्तन, दर्शन, मिथ और संस्कार के रूप में साहित्य के माध्यम से व्यक्त होता रहा है, किन्तु व्यक्ति के स्वतंत्र विवेक, विचार और विकल्प के मार्ग में बाधक सिद्ध होनेवाली जड़तागृस्त परम्परा के प्रति व्यंग्य एवं आक्रोश भरा विद्रोह भी किया है।

डा० भारती का पूरा रचनात्मक व्यक्तित्व सन् 1950 से लेकर 1960 तक के एक पूरे दशक के मूल्यगत संघर्षों की मिट्टी से निर्मित है। चाहे वह 'अंधायुग' का अश्वत्थामा हो, या 'कनुप्रिया' की राधा हो, या 'गुनाहों का देवता' का चंदर या सुधा हो, या 'सूरज का सातवां घोड़ा' के निम्न मध्यवर्गीय पात्र हो, या चाहे कहानियों में हरिनाकुस और उसका बेटा' हो। ये सबकी सब रचनाएं डा० भारती के समसामयिक जीवन की, उनके व्यक्तिगत संघर्षों की सृजनात्मक उपलब्धि हैं।